भारतीय संस्कृति के सूत्रों पर आधारित

लोक संस्कृति का इतिहास –

डॉ0 सुनीता गुप्ता

प्रवक्ता हिन्दी विभाग,

गाँधी महाविद्यालय, उरई

भारतीय संस्कृति के अध्ययन की आज के परिप्रेक्ष्य में महती आवश्यकता है। क्योंकि भारतीय संस्कृति ने मानव की भौतिक एवं अध्यात्मिक दोंनों प्रकार की उन्नति को ही अपना आधार बनाया था, जबकि विश्व की अन्य संस्कृतियों में, मिस्र रोम, ईरान, स्पार्टा आदि में केवल भौतिक प्रगति की ही ओर ध्यान दिया जाता रहा है। सम्भवतः इसी कारण से भारतीय संस्कृति विश्व की समस्त संस्कृतियों में अग्रगण्य है। भारतीय संस्कृति में, भौतिक प्रगति के साथ ही मानव की सर्वांगीण उन्नति की ओर ध्यान दिया गया है। अतएव इसके लिए हमें इसके सूत्रों के अवलोकन की ओर पुनः ध्यान देना चाहिए। भारतीय संस्कृति की उद्‌गम जानने के लिए हमें भारोपीय संस्कृति का प्राचीनतम स्वरूप समझने के लिए, जहाँ भारोपीय लोगों का सबसे प्राचीन साहित्य सुरक्षित है वहाँ जाना चाहिए ऐसा यूरोपीय विद्वानों का भी कथन है। हमारे वेदों व पुराणों मे सर्वप्रथम अध्यात्म की भावना पर बल देते हुए कहा है कि अध्यात्म की भावना भारतीय संस्कृति का प्राण है। भारतवासी प्रायः ईश्वर के अस्तित्व में आस्था रखने वाले हैं। इस देश के निवासियों के आचार–विचार, खान–पान, नित्य कर्मो के सम्पादन में ईश्वर का अस्तित्व दृष्टिगोचर होता है, धर्मपरायणता, अवतारवाद, यज्ञ, यम नियमों का पालन, कर्मफल एवं ंपुनर्जन्म, महान पुरुषों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति, चार पुरुषार्थ, संस्कार, वर्णाश्रमव्यवस्था, विश्व बन्धुत्व की भावना, समन्वय की भावना, मातृदेवो भव्, पितृदेवो भव् अतिथि देवो भव् इत्यादि के साथ सुख, सन्तोष, तप उदारता एवं दया का पाठ पढ़ाने वाली लोक संस्कृति हमारे जीवन में आध्यात्मिक और नैतिकता का विकास करने वाली है।

भारतवर्ष अनादि काल से अध्यात्म परायण देश रहा है। विश्व के अन्य सभ्य एवं समुन्नत देश जहाँ भौतिकवादी रहें हैं वहाँ भारत अध्यात्म वादी रहा है हमारे वैदिक वाङमय, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि में हमारे ऋषि–मुनियों ने इसी अध्यात्म विद्या का गहन चिंतन, मनन निदर्शित किया है। इस प्रकार से भारतीय संस्कृति निश्चय ही अध्यात्मिक भावना से अनुप्राणित रही है। अतः यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति का जन्म वैदिक काल में ही हो गया था यही संस्कृति विभिन्न प्रकार की लोक संस्कृति व संस्कारो से परिपुष्ट

होकर अनेक प्रकार की लोकमंगल भावनाओं से ओत–प्रोत होकर आज सम्पूर्ण विश्व में अन्य देशों से अधिक श्रेय भारतीय लोक संस्कृति और भारतीय संस्कृति को ही है।

अखण्ड भारत के समस्त निवासियो को भारतीय कहा गया वह चाहे किसी भी जाति, धर्म, वेषभूषा, भाषा–भूषा के ही क्यों न हो। भारत सर्वधर्म समन्वय, ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' इत्यादि की भावना से ओत प्रोत रहा है ''जब हम संस्कृति की चर्चा करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इतिहास की वास्तविक आत्मा संस्कृति है तथा इतिहास शरीर। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि मानव कार्यकलापों की जिस गाथा से इतिहास रुपी शरीर का निर्माण होता है उसमें संस्कृति आत्मा के रुप में निवास करती है।''[1] संस्कृति की बात सोचते समय मस्तिष्क में अनेक बातें उठने लगती हैं तथा यह तय करना दुष्कर हो जाता है कि संस्कृति की बात कहाँ से शुरु की जाए और कहाँ समाप्त हो इन शब्दों में एक अन्तर्विरोध है– ''भला संस्कृति की बात कभी समाप्त हो सकती है इसके समाप्त होने का अर्थ है– सम्पूर्ण मानव जाति का अंत। अतः संस्कृति की कहानी एक ऐसी श्रृंखला है जिसका आदि तो है पर अन्त नहीं।''[2] ''संस्कृति शब्द का निर्माण सम+कृ+क्तिन् प्रत्यय से हुआ है जिसका अर्थ है उत्तम प्रकार से किए गए कार्य या सुधरी हुई दशा। दूसरे शब्दों में मानव की बाह्य एवं आन्तरिक स्थितियों के सुसंस्कृत या परिष्कृत समूह को ही संस्कृति कहा जाता है और इन बाह्य एवं आंतरिक स्थितियों में मानव के विचार, भावनायें, परम्परायें, कल्पनायें, चेष्टायें, आदर्श आदि की बातें सन्निहित हैं'।''[3] अतः इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृति का सम्बन्ध मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि किसी भी व्यक्ति द्वारा जाति, समाज, और राष्ट्र के सामाजिक मूल्यों परम्पराओं एवं आदर्शों का समुचित निर्वाह के लिए की जाने वाली समस्त चेष्टायें संस्कृति कहलाती है।

भारतीय विद्वानों ने भी मुक्त कण्ठ से भारतीय संस्कृति की प्रवृत्तियों को स्वीकारते हुए बताया है कि योरोपीय संस्कृति का मूल भारतीय संस्कृति में निहित है। ''संस्कार जन्मा संस्कृति'' अर्थात जिसमें संस्कारों का योगदान हो उसे ही हम संस्कृति कह सकते हैं। और ये संस्कार परम्परागत होने के कारण पीढ़ी दर पीढी मानव को प्राप्त होते रहते है जो लोक में प्रचलित होकर हमारी लोक संस्कृति का रुप धारण कर लेते हैं। नर विज्ञान वेता (Biolagest) के शब्दों में संस्कृति में सब सीखा हुआ व्यवहार होता है। छन्दोग्योपनिषद् में समाज के सम्भेदों को सघटित करने का हेतु संस्कृति ही बताया गया है –

''सेतुविधृतिरेषां लोकानाम् सम्भेदाय।''[4]

संस्कृति के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किए हैं ''डॉ० सम्पूर्णानन्द ने कहा है कि ''संस्कृति उसे कहते है जिसे कोई समुदाय विशेष जीवन की विविध समस्याओं पर दृष्टिपात

करता है।'' काका कालेलकर के शब्दों में संस्कृति उसे कहते है जो हजारों वर्षों के पुरुषार्थ से मनुष्य ने अर्जित किया है। वस्तुतः संस्कृति विभिन्न युगों में अर्जित सम्पत्ति ही है। राजगोपालाचार्य के शब्दों में किसी भी जाति एवं राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचारवाणी एवं क्रिया का जो रुप व्याप्त रहता है, उसी का नाम संस्कृति है। डॉ० कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी ने संस्कृति शब्द को ठीक प्रकार परिभाषित करते हुए कहा है कि संस्कृति जीवन की उन अवस्थाओं का नाम है, जो मनुष्य के अन्दर व्यवहार ज्ञान और विवेक पैदा करती है, तथा मनुष्यों के व्यवहारों को निश्चित करती है। उनकी संस्थाओं को संचालित कर उनके साहित्य और भाषा को बनाती है।''[5]

यदि सम्पूर्ण इतिहास पर दृष्टि डाली जाये। तो हमे विदित होता है कि सम्पूर्ण मानव जाति तथा उसकी सामाजिक व लौकिक व्यवस्थाओं के कुछ मौलिक गुण होते है जो हमारे विचारों से निकल कर प्रत्यक्ष प्रकट हो जाते हैं, और संस्कृति को उसका रुप तथा विशिष्टता प्रदान करते है। संस्कृति अपने सदस्यों को विपरीत दिशाओं में क्रियाशील बलों के अत्यन्त सूक्ष्म सन्तुलन के फल स्वरुप उत्पन्न सन्तुलन और दृढ़ता प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति एक लम्बी एवं वैविध्यपूर्ण परम्परा है – दर्शन, धर्म, कला, साहित्य, विज्ञान तथा सामाजिक क्षेत्रों में एक अटूट प्रयास है। वस्तुतः ''संस्कृति मनुष्य के उन क्रिया कलापों व्यापारों और अभिव्यक्तियों का नाम है जिन्हें वह साध्य के रुप में देखता है, यह जीवन क्रिया के उन क्षणों का नाम हैं जिनको स्वयं महत्वपूर्ण समझा जाता है।''[6]

''ऊर्ध्वमूलमधः शाखामश्वत्थम् प्राहुरव्ययम।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्त वेद स वेदवित्।।''[7]

हम बात करते है भारतीय संस्कृति के सूत्रों की, तो कोई भी प्रमाण न मिलने के कारण उन्हें छोड़ दिया गया या उन्हें मिथक मान लिया गया है हम भारत के इतिहास की उन कड़ियों को जोड़ने का प्रयास कर रहें हैं – ''पुराणकारों ने प्राचीन काल की घटनाओं का जिक्र करते समय एक महत्वपूर्ण कार्ययज्ञ किया जिसमें उन्होंने उस काल के आकाश मण्डल में स्थित ग्रह नक्षत्रों का तात्कालिक वर्णन भी किया उन गृह नक्षत्रों के आधार पर शोधकर्ताओं ने पौराणिक इतिहास के काल का तिथि निर्धारण किया और उनके सत्य होने के प्रमाण भी जुटाये। इसी आधार पर भारत का गौरव प्रागैतिहासिक काल से गगन चुम्बी बना। जो कि लगभग सातवीं सदीं तक अक्षुण्ण बना रहा।''[8] जब किसी इतिहास के लेखन में तथ्यों का प्रमाण नहीं होता तो उसे मिथक मान लिया जाता है। ''पुराणकारों के साथ भी यही घटित हुआ उन्हें इतिहास के साथ उस ज्ञान को अपने में समेटना था जो प्राचीनकाल के समृद्ध परम्परा से चला आ रहा था इसलिए उन्होंने तथ्यों की चिन्ता करने के बजाय वंश परम्परा, सृष्टि उत्पत्ति की कथा, कर्मकाण्ड और ज्ञान की चिन्ता की।

दूसरी तरफ वैदिक ऋषियों ने अपने देवता और तत्व ज्ञान के साथ ही अपने समय के खगोल और भूगोल को चित्रित कर प्रकृति की शक्तियों से मनुष्यों को अवगत कराया। इसके अलावा प्राचीन काल से चली आ रही वाचिक परम्परा के साथ जब लेखन के युग का प्रारम्भ हुआ तो भारत के वंशलेखको, तीर्थपुरोहितों, राजकवियों और पण्डों के साथ–साथ वंश परम्पराओं के वाचक संवाहको के इतिहास को किसी विशेष रूप में सुरक्षित रखने के लिए विचार किया गया और वेदों तथा पुराणों की रचना की गई।''[9]

सिन्धु, गंगा, कृष्णा कावेरी महानदी व अन्य नदियों में सबसे प्राचीन नदी सिन्धु को माना गया यहीं से सिन्धुघाटी की सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। सिन्धु नदी की घाटी में एक उच्चकोटि की नगरीय सभ्यता का विकास हुआ था। सिन्धु, पंजाब, गुजरात, सौराष्ट्र आदि अनेक स्थलों के उत्खनन में इसके अवशेष मिलते है। अतः इतिहासकारों का मानना है कि वैदिक सभ्यता के आधार पर ही भारत की प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति है। परन्तु सिन्धु नदी की घाटी में स्थित मोहन जोदड़ो, हडप्पा आदि के स्थलों की खुदाई में प्राप्त वस्तुओं के अवशेषों ने यह स्पष्ट कर दिया कि आर्यो की सभ्यता के पूर्व भी भारत में सिन्धु नदी की घाटी में एक उच्च कोटि की सभ्य–संस्कृति का विकास हो चुका था सिन्धु घाटी के निवासी शान्त प्रिय थे, जबकि गाय आर्यो के लिए पूजनीय थी। सिन्धुओं के लिए बैल अधिक सम्माननीय था आर्य घोड़े से परिचित थे। सिन्धु घोड़े से अपरिचित, आर्य ताँबा कांसा, सोना, चाँदी, लोहा, सीसा आदि धातुओं का उपयोग करते थे। सिन्धु पाषाण, काष्ठ, ताँबा और काँसे का ही प्रयोग करते थे।

सिन्धु निवासी मूर्ति पूजक थे और वे शिव, मातृदेवी तथा लिंग की पूजा करते थे। आर्य मूर्ति पूजक नहीं थे उनके जीवन में अग्नि का विशेष महत्व था। दोनों सभ्यताओं में वेश–भूषा, बरतन तथा मनोरंजन के साधनों में भी अन्तर था। इन विषमताओं के कारण निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि सिन्धु सभ्यता वैदिक सभ्यता की पूर्ववर्ती थी और वैदिक आर्य इसके निर्माता नहीं थे। सरजॉन मार्शल का मत है कि ''सिन्धु तथा आर्य के निर्माता इन सभ्यताओं की विषमताओं के कारण किसी भी दशा में एक नहीं हो सकते।''[10] संस्कृति और सभ्यता का अटूट सम्बन्ध है। संस्कृति के ही आधार पर सभ्यता चलती है। यदि संस्कृति जड़ है तो सभ्यता उसका वृक्षरुप। जिस प्रकार सें वृक्ष का पोषण संरक्षण एवं संवर्धन होता है ठीक उसी प्रकार से सभ्यता का पोषण संरक्षण एवं संवर्धन होता है। लोक संस्कृति भी संस्कृति का जटिल एवं विकसित रुप है।

''वैदिक ऋषियों ने सृष्टि की उत्पत्ति के साथ कर्मकाण्ड की परम्परा भी बनाई जिसमे वैदिक क्रिया संस्कार, वेदान्तवादी विचार, वैष्णव, शैव, शाक्त सम्प्रदाय आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं। बहुत सी बातों ने हिन्दुओं को एक सूत्र में बाँध रखा है जैसे – कर्म और पुनर्जन्म। विशाल संस्कृत भाषा को सभी क्षेत्रीय भाषाओं की जननी कहा है, धार्मिक विषयों में भी सभी लोगों की वेदों मे अटूट आस्था है। यद्यपि बहुत

कम लोग हैं जिन्होंने वेदों का अध्ययन किया परन्तु हिमालय से कन्याकुमारी तथा मानसरोवर एवं बदरीनाथ से लेकर रामेश्वर तक तीर्थ स्थानों की यात्रायें। और उन सबसे अधिक शक्तिशाली एकता के सूत्र में बाँधने वाला हिन्दू धर्म का कर्म पुनर्जन्म सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त आदिकाल से अनवरत गति से चलता आ रहा है और आज इसका अपना एक विशाल साहित्य है।''[11] बौद्ध और जैन हिन्दू नहीं परन्तु कर्म और पुनर्जन्म के समर्थक है। इसी पुनर्जन्म और कर्मफल के सिद्धान्त के फलस्वरुप भारतीयों ने सदाचार को जीवन में बड़ा महत्व दिया है। बुरे कर्म को फल बुरा तथा अच्छे कर्म का फल अच्छा मनुष्य को अगले जन्म में भोगना होगा इसी भावना के साथ मनुष्य जाति कर्म के साथ–साथ धर्म और सदाचार की संस्कृति को अपनाती है।

भारतीय लोक संस्कृति में धर्म इत्यादि का अतिविस्तृत एवं व्यापक अर्थ में वर्णन किया है। हमारे ऋषि तथा मुनियों ने प्रत्येक व्यक्तिगत एवं सामाजिक अनुष्ठान को धर्म की सीमाओं में बाँधकर रखा है जिनमें सामाजिक कार्य, शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक व सांस्कृतिक सभी को धर्म का अंग माना है। छोटों का बड़ों के प्रति, बड़ों का छोटों के प्रति, राजा का प्रजा के और प्रजा का राजा के प्रति कर्त्तव्य आदि सभी बातें धर्म के आधीन मानी गई हैं। मनीषियों ने धर्म की परिभाषा देते हुए कहा है – ''यतोऽभ्युदय निःश्रेयत सिद्धिः स धर्मः'' अर्थात् जिससे उन्नति और कल्याण की सिद्धि होती है वही धर्म है। मनुस्मृतिकार ने तो धर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि किसी के प्रति प्रतिकूल आचरण न करना ही धर्म का सार है। मनु महाराज ने धर्म चार प्रकार का बताया है – 1. जो वेदोक्त है। 2. जो स्मृतियों में उल्लिखित है। 3. श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण। 4. जिसका अनुमोदन मानव की आत्मा स्वयं करे। अवतार वाद को भी भारतीय लोक संस्कृति का प्रमुख रुप माना गया है। ईश्वर के सगुण रुप में आस्था रखने वालों को यह दृढ़ विश्वास होता है कि संसार में धर्म की स्थापना तथा अधर्म के विनाश के लिए समय–समय पर भगवान मनुष्य रुप में इस पृथ्वी पर अवतार लिया करते हैं श्री मद्भगवत् गीता में इसी का उल्लेख हुआ है –

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थामधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे।।[12]

धर्म की रक्षा तथा अधर्म के विनाशार्थ ईश्वर के मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामुन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि ये दस अवतार माने गये हैं। इन दस अवतारों में सर्वाधिक जनमानस का प्रभावित करने वाले दो अवतार हैं – राम और कृष्ण। भारतवासी अपने आप को राम और कृष्ण का वंशज कहने में गर्व अनुभव करते हैं। भारतीय ऋषि मुनियों ने जन–जीवन में यज्ञ को महत्व देते हुए प्रत्येक अवसर एवं उत्सव पर यज्ञ संस्कार को बताया है कि प्रत्येक हिन्दू गृहस्थ के कार्यो में पाँच महायज्ञों का अनुष्ठान प्रत्येक गृहस्थ को अनिवार्य रुप से करना होता था। जो गृहस्थ इस नियम का उल्लंघन करता था वह समाज में

मृतवत् समझा जाता था। ये पाँच यज्ञ क्रमशः इस प्रकार थे– ब्रम्ह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ का विधान है। ये सभी यज्ञ लोक कल्याण की भावना से किए जाने वाले विधान बतायें हैं। मनुस्मृतिकार ने इन पाँच महायज्ञों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से दिया है।

''अध्यापन ब्रम्ह्मयज्ञः – पितृ यज्ञस्तु तर्पणम्।

होमो देवी बलिभौ तो नृप यज्ञोऽतिथि पूजनम।।''[13]

भारतीय संस्कृति में सूत्रों के आधार पर लोक संस्कृति के साथ मनुष्य के जीवन के हित के लिए शास्त्रों में ''मातृदेवो भव'', पितृ देवोभव और आचार्य देवोभव की भावना इसी प्रवृत्ति की द्योतक है। ऐसी प्रेरणा हमारी भारतीय संस्कृति ही देती है। बड़े की परिभाषा यहाँ आयु, विद्या, बुद्धि, यश और बल से है जो हमसे बड़ा है वह आता है। इसके साथ ही इस संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थो की कल्पना की गई है, और साथ ही सोलह संस्कारो का जन्म से लेकर मृत्यु तक विधान मिलता है कहा गया है – **''संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषाय न येन वा''** अर्थात संस्कार दोषों को हटाकर गुणों का आधान करते हैं। संस्कारो के साथ ही वर्णाश्रमों की भी व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वर्ण व्यवस्था में चार वर्णों ब्राम्ह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों का स्थान नियत था। समाज के इन चार अंगो का सामाजिक व्यवस्था के सुचारू रुप से सम्पादन हेतु विधान किया गया वर्ण व्यवस्था का उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में इस प्रकार मिलता है –

ब्राम्ह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या सूर्यो अजायत।।[14]

इस प्रकार से वर्ण व्यवस्था का निर्धारण किया गया और साथ ही विश्वबन्धुत्व तथा सर्वधर्म समन्वय की सांस्कृतिक एकता विद्यमान रही है। उस समय ऋग्वैदिक काल में आर्थिक जीवन पशुओं पर आधारित था परन्तु उत्तर वैदिककाल में जीवन मे पर्याप्त सुधार हुआ। सूत्र एवं स्मृतिकाल में भारतीय आर्थिक जीवन में अत्याधिक वृद्धि हुई तथा रामायण महाभारत और पौराणिक काल में राजा–रानी दोनों की आर्थिक स्थितियाँ सुदृढ़ हो गई कृषि कार्य, हस्तकला, मूर्तिकला आदि का निर्माण कर अच्छे मूल्यों पर बेचने के पश्चात् मठ, निर्माण रहन–सहन, खान–पान, बहुमूल्य वस्त्र धारण करना, धातुओं से सुन्दर बर्तन बनाना, पशुपालन वेषभूषा आदि के साथ कला संस्कृति में भी पर्याप्त सुधार हुआ।

अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक अव्यवस्था से सांस्कृतिक विकास में निष्क्रियता आ गई थी। कलाकार और चित्रकार राजकीय संरक्षण से विमुख हो गये, कुछ स्थानों को छोड़ गये, शेष संगीतज्ञो को

अपने राजदरबार के पदो से वंचित होना पड़ा। जब राजाओं और नबाबों की स्थिति में सुधार आया तों परम्परागत सांस्कृतिक जीवन के उभरने का शुभारम्भ होने लगा। ''भारतीय चित्रकला में स्त्रियों के चित्र बनाना यहाँ (भारत) के चितेरों का प्रमुख विषय रहा। राजस्थान के चित्रकारों ने स्त्रियों के चित्र अजन्ता के चित्रों से भिन्न बनाये हैं इसमें पद्मिनी मीरा के चित्र इसी आधार पर निर्मित किए गये है।''[15] चित्रकला के साथ नृत्य तथा संगीत को भी लोक संस्कृति का अटूट सम्बन्ध है। क्योंकि संगीत का तात्पर्य गायन और वादन दोनों नृत्य संगीत का ही एक अंग है जिसका संगीत से कोई भिन्न अस्तित्व नहीं है। प्राचीन भारत और मुस्लिमकाल में संगीत की ओर अधिक ध्यान दिया गया था।

भारत अपने शास्त्रीय संगीत के लिए प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा हैं जबकि कट्टर मुसलमान संगीत को निश्चित रुप से अधार्मिक समझते थे और इसलिए उसकी निन्दा करते थे। कुछ सुल्तानों ने संगीत निषिद्ध कर रखा था परन्तु अन्य जैसे– जलालउद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक अपने दरबारों में सगीत गोष्ठियाँ करते थे। सैयद सुल्तान मुबारक शाह इस कला का विशेष प्रेमी था, हुसैन शाह शरकी भी इस कला में अत्यधिक निपुण था, और बाबर स्वयं इस कला में दक्ष था। अकबर स्वयं कुशल संगीतज्ञ था और नक्कारा अच्छा बजाता था। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो विख्यात संगीतज्ञ था इसी युग में लखनऊ के नबाब वाजिद अली शाह के यहाँ भी संगीत का वातावरण उपस्थित था। इस प्रकार से संगीत का वातावरण राजाओं– महाराजाओं, नबाबों तथा जागीरदारों के यहाँ बना रहता था। बड़े–बड़े उपहार भेंटें गायकों, नृत्यकारों तथा नर्तकियों का प्राप्त होती रहती थी। दिन भर की कथा के पश्चात् इन्हीं मंनोरजनों के साथ मनुष्य अपनी थकान को मिटा लेते थे।

शारीरिक विकास के लिए मनुष्यों ने शरीर को स्वच्छ रहने का महत्व भली भाँति समझ लिया था। इसीलिए प्राचीन काल में भोजन पानी वेशभूषा आदि सभी का प्रबन्ध करते समय स्वास्थ्य का विशेष रुप से ध्यान रखा जाता था। अन्न और शारीरिक विकास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आयुर्वेद आदि सभी ग्रन्थों में भी भोजन एवं फलों के विविध प्रकारों, उनके निर्माण की विधियों एवं गुणों का वर्णन है। रक्त, मज्जा, मद, वीर्य, आदि धातु विशेषों के वृद्धि कारक सरस पदार्थों को ही भोजन में स्थान दिया गया है। भोजन तीन प्रकार के बताये गये हैं– सात्विक, राजस और तामस। श्रीमद्भागवत् गीता में तीनों प्रकार के भोजन की व्याख्या की गई है। भोजन व्यवस्था में प्राचीनकाल से अब तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। रोटी, दाल, शाक, चावल आदि चारों पदार्थ ही सदैव से भारतीय भोजन व्यवस्था के अंग रहे हैं। उनमें विशेष रुप से पत्तेदार व हरी सब्जियों के रस आदि का सेवन स्वास्थ्यवर्धक बताया गया है। नियमानुसार समय भी निर्धारण किया गया – भोर की बेला मे स्वल्पाहार, अपरान्ह में पूर्णाहार तथा रात्रि में अल्पाहार बताया गया है।

लोक संस्कृति में ''लोकगीत एक प्रकार की वह प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो जनमानस के आन्तरिक दिल से पहाड़ी झरने के समान अनायास ही फूट निकलती है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने झेवर चन्द्र मेघाणी के कथन को उद्धत करते हुए लिखा है – ''जिस प्रकार कोई नदी घोर अन्धकारमयी गुफा से बहकर आती हो, उसके उद्‌गम का पता न हो, ठीक यही दशा लोकगीतो की है।''[16] लोक संस्कृति में विभिन्न प्रकार के कलाओं के साथ अभिनय (नाटक) की पद्धति प्रचलित है जो कि वर्तमान समय तक चल रही है जिनमें तीज त्योहारों, संस्कारो एवं विभिन्न प्रकार की बहुरंगी रेखाओं का ताना–बाना है। यहीं संस्कृति कालान्तर में अनुष्ठान बन गये हैं ''आत्मा अभिव्यक्ति तथा उल्लासपूर्ण संस्कारों का अस्तित्व भी लोक संस्कृति में निरन्तर चलता आ रहा है।''[17] इनमें मानव मन के विविध भावों की सरस व्यंजना भारतीय लोक संस्कृति के अनूठे चित्रों को दर्शाती है। अतः इन्हें लोक संस्कृति का दर्पण कहना उत्युक्ति नहीं। ''ये तो संस्कृति के मौखिक कोण है। जिनमें मानव का अतीत तथा वर्तमान प्रतिबिम्बित होता है तथा उनकी गौरव महिमा और नव निर्माण की शक्तियों को भी अनुगूँज सुनाई देती है।''[18]

इस देश में व्यापक रुप में मान्य देवता राम, कृष्ण, शिव और शक्ति (दुर्गा, काली, भगवती आदि) हैं किन्तु अनेक ऐसे देवता भी हैं जो मात्र स्थानीय हैं। स्थानीय मानव जातियाँ स्थानीय देवी–देवताओं का अनुष्ठान करते हैं परन्तु राम की रामलीला, कृष्ण की रासलीला, कृष्णलीला तथा आद्यशक्ति दुर्गादेवी की अर्चना सम्पूर्ण भारत देश में हर्षोल्लास के साथ की जाती है और रंगमंच द्वारा इनके चरित्रों को प्रस्तुत किया जाता है। रंगमंच पर प्रस्तुत करने वाले नायक–नायिकाओं को सम्पूर्ण भारतवासी उसी आस्था की दृष्टि से उन पात्रों के प्रति, उस समय श्रद्धा भी रखते हैं, परन्तु आज के दौर में समयाभाव के कारण हमारी लोक संस्कृति के रुप ही बदलते जा रहे हैं।

भारतीय संस्कृति के अग्रदूत एवं भाष्यकर डॉ० राधा कृष्णन ने आज की इस विषय परिस्थिति में भारतीय लोक संस्कृति की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा है – ''भारत का ही नही, सम्पूर्ण विश्व का यह दुर्भाय है कि हम आध्यात्मिकता को सर्वथा भूलकर भौतिकता के पीछे भाग रहे हैं। विश्व में शान्ति और वास्तविक सुख की वृद्धि के लिए आध्यात्मिकता और नैतिकता का आश्रय लेना अभीष्ट है।''19 और यह आध्यात्मिकता एवं नैतिकता केवल प्राचीन भारतीय संस्कृति के पठन–पाठन एवं जीवन में उतारने से ही सम्भव है। मानव का जीवन तभी सच्ची सुख शान्ति प्राप्त कर सकेगा जब उसके जीवन में सत्य, त्याग, सन्तोष, दया आदि सद्‌गुणों का विकास हो। इन गुणों के सम्यक् विकास को प्राप्त हो जाने पर मानव की आध्यात्मिक उन्नति से वास्तविक शान्ति एवं विश्व कल्याण की भावना विकसित हो सकेगी।

सांराश –

हमारी संस्कृति ऋग्वेद के आरम्भिक काल से लेकर रामायण महाभारत के काल, बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव, सम्राट विक्रमादित्य का शासन काल, उपनिषदों सूत्रों, ग्रन्थों, मनुस्मृति, भरत मुनि का नाटय शास्त्र, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, जिसे हम भारतीय संस्कृति का स्वर्ण युग कह सकते हैं। इस प्रकार से भारतीय संस्कृति के सूत्रों के आधार पर लोक संस्कृति निश्चय ही महान उदात्त एवं विश्व की भावना से सदैव ही अनुप्राणित रही है। संस्कृति शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख यजुर्वेद में संस्कार अर्थ में हुआ है। परन्तु 'संस्कृति' के वर्तमान अर्थ का विस्तार परवर्ती युग में हुआ है। संस्कृति यदि सागर है तो लोक संस्कृति (कलाऐं) तरंग। जैसी कला वैसी संस्कृति, जैसी संस्कृति वैसी कला, संस्कृति की ही तरह कला का भी शाश्वत मूल्य है। कला भी प्रेरणा का स्थाई स्रोत है तथा विभिन्न प्रकार की कलाऐं ही लोक संस्कृति हैं। संस्कृति और सभ्यता का अटूट सम्बन्ध है यदि संस्कृति जड़ है तो सभ्यता वृक्ष है। उसी प्रकार से लोक संस्कृति, संस्कृति का जटिल तथा विकसित रुप है। अतएव संस्कृति के अन्तर्गत एक ओर जहाँ वास्तुकला, मूर्तिकला तथा स्थूल कृतियों का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर आत्मा परमात्मा तथा विभिन्न परम्पराओं सम्बन्धी दार्शनिक विवेचन का सन्निवेश हो जाता है। आज की भौतिक चकाचौंध ने जीवन के प्रत्येक पक्ष को चाहे वह धार्मिक हो, राजनैतिक हो, सामाजिक हो या व्यक्तिगत हो पूर्णतः स्वार्थ, दम्भ, ईर्ष्या, क्रोध आदि की कलुषित भावनाओं से दूषित कर दिया है। यदि हम सर्वांगीण उन्नति चाहते हैं तो हमें प्राचीन भारतीय लोक संस्कृति का अध्ययन कर जीवन के इस कालुष्य का परिमार्जन करना होगा। तभी हमारा जीवन सुखद एवं शान्तिमय हो सकेगा।

अतः हम व्यर्थ की मृग तृष्णा को त्यागकर अपने अतीत की ओर दृष्टिपात करें और अपनी प्राचीन संस्कृति के चिन्तन मनन द्वारा जहाँ हम अपना तथा देश का कल्याण करें वहाँ विश्व कल्याण की भावना में भी जुट सकें। यदि हमने प्राचीन संस्कृति के इस अक्षय भण्डार को ढूँढ़ने का प्रयास किया तो निश्चय ही हम पुनः प्राचीन जगत गुरु का रूप धारण कर सकेंगे।

सन्दर्भित सूची

1. भारत का सांस्कृतिक इतिहास– डॉ० एम०पी० श्रीवास्तव, पृ०सं0 1।
2. वही, पृष्ठ सं० – 4।
3. प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्व – आचार्य श्रीराम शर्मा, पृ०सं० – 3।
4. छन्दोग्योपनिषद् – 8/4/1।
5. भारतीय संस्कृति के आधार – विद्यानिवास मिश्र, पृ०सं०– 6।
6. भारत का सांस्कृतिक इतिहास – डॉ० एम०पी० श्रीवास्तव, पृ०सं0 3।
7. श्रीमद्भगवतगीता – पन्द्रह अध्याय का प्रथम श्लोक।
8. डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.बेव दुनियाँ डॉट कॉम, सम्पादक जयदीप कर्णिक।

9. वही
10. भारत का सांस्कृतिक इतिहास– डॉ० एम०पी० श्रीवास्तव, पृ०सं0 14।
11. आत्मा, कर्म, पुनर्जन्म और मोक्ष – डॉ० मधुरिमा सिंह पृ0सं0 50।
12. श्रीमद्भगवतगीता – 4/7/8।
13. मनुस्मृति – 3/70
14. ऋग्वेद – पुरूषसूक्त – 10/90/12
15. भारत का सांस्कृतिक इतिहास– डॉ० एम०पी० श्रीवास्तव, पृ०सं0 468–469।
16. रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, ग्रामगीत भाग – 3 (बम्बई : नवनीत प्रकाशन, 1955), पृ०सं० – 20।
17. हरिप्रसाद सुमन, हिमांचली लोकगीत भाग –1 (भाषा एवं संस्कृति), पृ0सं0 117।
18. हिमांचल कला संस्कृति एवं भाषा – सम्पादक – श्रीराम शर्मा, एम०आर० ठाकुर, पृ०सं० – 75
19. प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्व – आचार्य श्रीराम शर्मा, पृ०सं० – 13।
20. लोक साहित्य और संस्कृति – डॉ० दिनेश्वर प्रसाद।
21. हिन्दू संस्कृति – धर्म सभ्यता, परम्परा, प्रतीक – राकेश गुप्ता।
22. भारतीय संस्कृति के आधार ग्रन्थ – कन्हैया लाल चांडक